ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 303-305
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-7, No.-I, Issues-VIII YEAR- June-2017

भारतीय कथा साहित्य और हिन्दी सिनेमा

डॉ0 सन्तोष कुमार सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी, श्री सुदृष्टि बाबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुदिष्टपुरी, रानीगंज–बलिया (उ0प्र0) भारत

भारतीय सिनेमा ने अपने लगभग सौ वर्षों के सफर में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। भारतीय सिनेमा ने अपने प्रारंभिक दौर से ही साहित्य और धर्म से सम्बन्धित फिल्मों को बनाना शुरू किया। प्रारम्भिक भारतीय सिनेमा पर पारसी थियेटर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दीखता है। पारसी थियेटर के नाटकों में गीत–संगीत, हास्य और अश्लीलता का विकृत रूप दिखाया जाता था, जो बाद की भारतीय फिल्मों पर पारसी थियेटर के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। फिल्म लोक विधा है। फिल्में नाट्य की तरह आम जनता तक अपनी बात पहुँचाने का एक जरिया हैं। उसका उद्देश्य मनोरंजन है, चाहे दर्शक अनपढ़ हो या शिक्षित। जबकि साहित्यकार की रचना शिक्षित पाठकों के लिए होती है। जब साहित्य पर आधारित फिल्म बनती है, तो वह प्रायः फिल्मी दुनिया से तालमेल नहीं बना पाती है। साहित्यकारों को इस तथ्य को समझना होगा और साहित्य को फिल्म के लिए रचना होगा, साथ ही निर्माता और निर्देशकों को भी अपनी भूमिका को सही तरीके से निभाना होगा। केवल मुनाफा ही प्रमुख उद्देश्य नहीं होना चाहिए। तब जाकर हम विश्व सिनेमा पर अपनी छाप छोड़ पाएँगे। इसी परिपेक्ष्य में साहित्य और सिनेमा के अंतः सम्बन्ध और विकास को समझने का प्रयास प्रस्तुत लेख में किया गया है।

भारतीय सिनेमा के विकास में हिंदी के साहित्यकारों की रचनाओं का विशेष प्रभाव दृश्टिगत होता है। हिंदी भारत की ही नहीं, बल्कि भारतीय सिनेमा की भी मुख्य भाषा है। यह भी सत्य है कि, हिंदी में बनी साहित्यिक फिल्में व्यावसायिक रूप से उतनी सफल नहीं रही हैं, जितनी कि मनोरंजक और मसाला फिल्में। ये फिल्में मुख्य धारा की फिल्में नहीं बन पाईं, कला फिल्मों के नाम पर इन फिल्मों को चुनिन्दा दर्शक ही देखना पसंद करते हैं। जबकि इसके उलट हिंदी कवि, गीतकार, शायर और गजलकारों की नज्में बेहद चर्चित रहीं और पसंद की गईं। भारतीय सिनेमा की कल्पना आप बिना गीत और संगीत के नहीं कर सकते। कई फिल्में तो केवल अपने संगीत और उम्दा गीतों के दम पर बेहद सफल और चर्चित रही हैं।

हिंदी के रचनाकारों में प्रेमचंद सबसे पहले फिल्मी नगरी मुम्बई अजंता सिनेटोन कंपनी के बुलावे पर पहुँचे और लगभग दो वर्षों तक वह मायानगरी में रहे। प्रेमचन्द जी का अनुभव फिल्मों के निर्माण को लेकर बहुत अच्छा नहीं रहा। प्रेमचंद की कहानी पर मोहन भावनानी ने 1934 में 'मजदूर' नाम से फिल्म का निर्माण किया। यह फिल्म प्रेमचंद के विचारोत्तेजक कथावस्तु के चलते सेंसर के काट–छाँट के बाद रिलीज की गयी। शुरू में यह फिल्म कई प्रान्तों में प्रतिबंधित रही। कहानी में हुए बदलाव से प्रेमचंद बहुत आहत हुए। यह फिल्म जब बनी तब इसका नाम 'मिल' रखा गया। फिर 'मिल मजदूर' और अंत में इसे 'मजदूर' नाम से प्रदर्शित किया गया। पंजाब में यह 'गरीब मजदूर' के नाम से प्रदर्शित हुई। 1934 में ही प्रेमचंद की रचनाओं पर आधारित 'नवजीवन' और 'सेवासदन' नाम से दो फिल्में बनीं, पर उतनी सफल नहीं रहीं। उनकी मृत्यु के बाद 1941 में उनकी कहानी 'त्रिया चरित्र' पर 'स्वामी' नाम से फिल्म बनायी गयी, पर वह भी लाप रही। यही हाल उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' पर बनी फिल्म का भी हुआ। इसके बाद रंगभूमि, गबन, हीरा–मोती, जैसी रचनाओं पर भी फिल्में बनीं। ये फिल्में भी नहीं चलीं। साठ के दशक में सत्यजित रे ने उनकी कहानियों–शतरंज के खिलाड़ी' और 'सद्गति' पर फिल्में बनाईं, जो कुछ हद तक सफल रहीं। प्रेमचंद ने 28 नवम्बर, 1934 को जैनेन्द्र को लिखे एक पत्र में निर्माता और निर्देशकों की मनमानी का जिक्र करते हुए लिखा था–"मैं जिन इरादों से आया था, उनमें से एक भी पूरा होता नजर नहीं आता। ये प्रोड्यूसर जिस ढंग से कहानियाँ बनाते आये हैं, उसकी लीक से जौ भर भी हट नहीं सकते। वल्गैरिटी' को ये 'एंटरटेनमेंट वैल्यू' कहते हैं। मैंने सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं, जिन्हें शिक्षित समाज भी देखना चाहेगा, लेकिन उन पर फिल्म बनाते समय इन लोगों को संदेह होता है कि ये चलें, या न चलें।" प्रेमचंद की यह पीड़ा समस्त साहित्यकारों की पीड़ा है। निर्माता–निर्देशक अपनी शर्तों पर फिल्म का निर्माण करते हैं, उन्हें सिर्फ मुनाफे से मतलब होता है। प्रेमचंद की अधिकांश कहानियाँ और उपन्यास लोगों को बेहद पसंद आये। न केवल हिंदी भाषी, बल्कि अन्य भारतीय भाशाओं और विदेशी भाषा के पाठकों को भी। तो क्या उनके साहित्य में निर्देषकों और निर्माताओं के लायक कहानीपन नहीं है। जिस साहित्य को अशिक्षित

अनुरूपी लेखक

ASVS Society Reg. No. 561/2013-14

भी सुनकर मुग्ध हो जाते हैं, उन पर फिल्में क्यों नहीं बन सकतीं? क्या यह माना जाय कि फिल्मकार केवल विदेशी फिल्मों को चुराकर उन पर फिल्म बनाना ज्यादा आसान समझते हैं।

प्रेमचन्द की कहानियों पर बनी फिल्मों के दौर में ही अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, सुदर्शन, गुलेरी, आचार्य चतुरसेन, सेठ गोविन्ददास और मंटो की कहानियों पर भी फिल्मों का निर्माण हुआ। इन रचनाकारों की फिल्में भी अपेक्षित उम्मीद पर खरी नहीं उतरीं, पर मंटों की कहानी पर फिल्म 'अछूत कन्या' अपने समय की सुपरहिट फिल्म रही है। इसके अलावा मंटो की कहानियों पर 'मिर्जा गालिब' और 'बदनाम' नाम से भी फिल्में बनीं। बाद में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', ख्वाजा अहमद अब्बास, मनोहर श्याम जोशी, राही मासूम रजा, सुरेन्द्र वर्मा, कैफी आजमी, कवि प्रदीप, नरेन्द्र शर्मा, नीरज, हरिवंश राय बच्चन, शैलेन्द्र, मजरूह सुल्तानपुरी और शकील बदायूँनी आदि ने हिंदी सिनेमा में अपनी उपस्थिति किसी न किसी रूप में बनाये रखी।

1966 में फणीष्वरनाथ 'रेणु' की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर बासु भट्टाचार्य और शैलेन्द्र ने 'तीसरी कसम' नाम से फिल्म बनाई। इस फिल्म में राजकपूर और वहीदा रहमान जैसे मँझे हुए कलाकारों के होने के बावजूद फिल्म नहीं चली। लेकिन आज यह फिल्म अपनी अद्वितीय रचनात्मकता के कारण क्लासिक फिल्म मानी जाती है। इसके बाद बासु चट्र्जी ने राजेंद्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' (1969) एवं मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' पर 'रजनीगंधा' (1974) फिल्में बनाईं, जो दर्शकों को पसंद आयीं। बासु चट्र्जी ने भारतीय साहित्यकारों की रचनाओं को अपनी नवीन सोच के अनुसार प्रस्तुत किया, जिसके फलस्वरूप इनकी फिल्मों का परिणाम बेहतर रहा।

यह साठ–सत्तर का दशक हिंदी साहित्य से जुड़ी फिल्मों के लिए विकास युग जैसा था, जिसे बाद में समानांतर सिनेमा भी कहा गया और यह वही दौर है, जब एंग्री यंगमैन अमिताभ बच्चन फिल्मी दुनिया में एक नये रूप में आते हैं। उस समय का मौजूदा सामाजिक और राजनैतिक माहौल बेहद उथल–पुथल का था। दर्शकों की रुचि अब मनोरंजक और हिंसक मारधाड़ वाली फिल्मों में ज्यादा दीखने लगी थी। कला सिनेमा का मुकाबला इन व्यवसायिक फिल्मों से था। धीरे–धीरे समय के साथ–साथ साहित्य में भी बदलाव दीखने लगा था। एक दिलचस्प तथ्य यह भी है कि, इसी समय साहित्य से सम्बन्धित फिल्में और संवेदनशील निर्देशकों की लम्बी सूची दीखती है। इस समय जो फिल्में 'हिन्दी साहित्य पर केन्द्रित थीं' उनमें प्रमुख हैं – कमलेश्वर की कहानी 'फिर भी' पर 'तलाश' नाम से, शिवेंद्र सिन्हा की, 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास पर 'बदनाम बस्ती' नाम से और प्रेम कपूर ने 'आँधी' और 'मौसम' नाम से गुलजार की फिल्में निर्देशित कीं। कमलेष्वर ने अपनी कहानियों पर गुलजार द्वारा बनाई गईं फिल्मों की पटकथा, संवाद और गीत स्वंय लिखे थे। इन फिल्मों को आम दर्शक और बौद्धिक वर्ग दोनों ने सराहा। कमलेश्वर के अलावा मणि कौल ने बेहद ईमानदारी से साहित्य से जुड़ी फिल्मों को निर्देशित किया। मणि कौल ने मोहन राकेश की कहानी पर 'रोटी' (1969) नाम से फिल्म बनाई। यह फिल्म अपने कथा और संवाद के कारण बेहद चर्चित रही। इस फिल्म को फिल्मफेयर क्रिटिक्स अवार्ड भी मिला। इसके अलावा 1972 में 'अषाढ़ का एक दिन' (मोहन राकेश के नाटक पर आधारित), 1974 में 'दुविधा' (विजयदान देधा की कहानी पर आधारित) फिल्में बनीं। 'थ्री इडियट' फिल्म ने 1992 में सर्वश्रेष्ठ फिल्म के लिए फिल्मफेयर क्रिटिक्स अवार्ड भी जीता। 'दुविधा' फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशन का राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार 1974 में मिला। अपने निराले अंदाज में मणि कौल ने मुक्तिबोध की कहानी 'सतह से उठता आदमी' पर इसी नाम से फिल्म बनाईं। विनोद कुमार शुक्ल की रचना 'नौकर की कमीज' पर और जायसी के महाकाव्य 'पद्मावत' पर भी फिल्में बनायी गयीं। समानांतर सिनेमा को समृद्ध करने वाली फिल्मों में कुमार साहनी ने निर्मल वर्मा की कहानी 'मार्यादर्पण' पर 1972 में इसी नाम से, शैवाल की कहानी पर प्रकाश झा ने 'दामुल' नाम से और श्याम बेनेगल ने धर्मवीर भारती की रचना 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' पर फिल्में बनाईं। अन्य भारतीय भाषाओं में बंकिमचंद्र की रचना पर 'आनंदमठ', विमल मित्र की रचना पर 'साहब, बीबी और गुलाम', शरतचंद्र की रचना पर 'देवदस', आर0के0 नारायण की रचना पर 'गाइड', फकीर मोहन सेनापति की रचना पर आधारित 'दो बीघा जमीन' और मिर्ज़ा हादी की उर्दू कृति पर बनी फिल्म 'उमराव जान' अपने विषय और उम्दा निर्देशन के कारण सफल रहीं।

नब्बे के दशक के बाद भूपेन हजारिका की फिल्म 'रुदाली' ने समाज, साहित्य और सिनेमा के ढाँचे को एक नया स्वरूप दिया। क्रमशः फिल्मकारों के मन में यह विचार बलवती होने लगा कि समाज का वास्तविक चित्रण करने वाली फिल्में भी सफल हो सकती हैं। प्रयोग तो हुए लेकिन साहित्यक रचनाएँ नदारद रहीं। इसी समय विदेशी फिल्मों की नकल का भी चलन खूब चला। हिंदी फिल्मों का मौजूदा परिदृश्य अब बदल चुका है। हर तरह की फिल्में बन रही हैं। इसका प्रत्यक्ष

ASVS Society Reg. No. 561/2013-14

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-7, No.-I, Issues-VIII YEAR- June-2017

उदाहरण 'थ्री इडियट', 'परिणीता', 'पिंजर', और 'मोहल्ला अस्सी' जैसी फिल्में हैं। फिल्मों में इतनी विविधता पहले नहीं थी। छोटे बजट की फिल्मों का बाजार आज अपनी अलग पहचान बना चुका है।

वस्तुतः कहानी का दर्शक से तारतम्य तभी हो पायेगा, जब फिल्म के कथानक में निरंतरता बनी रहेगी। तारतम्य का टूटना, लय का टूटना होता है। यह क्रम–भंग होने से उम्दा से उम्दा कहानी भी अपने विषय से भटक जाती है और सिनेमा दर्शकों से दूर चली जाती है। सिनेमा में दृश्य और ध्वनि का महत्व शब्दों से ज्यादा होता है। एक ही कहानी पाठकों के मन को अलग–अलग रूप और प्रभाव के साथ स्पंदित करती है। जबकि फिल्मकार को कैमरे के द्वारा कहानी को इस तरह प्रस्तुत करना होता है कि, जिससे अलग–अलग प्रदेश, वर्ग और भाषा के दर्शक उससे अपना साधारणीकरण कर सकें।

अभी तक हिंदी के मुकाबले बंगाली फिल्मकारों ने साहित्यिक रचनाओं को फिल्म के रूप में चित्रित करने में, लेखक की संवेदना, बाजार और फिल्म मेकिंग को बेहतरीन रूप में संयोजित किया है और यही नहीं उनकी फिल्में व्यवसायिक रूप से भी सफल साबित हो रही हैं। अब हिंदी सिनेमा में भी एक ऐसी पीढ़ी तैयार हो रही हैं, जो अपनी रचनात्मकता से हिंदी सिनेमा को प्रभावित कर रही है और साथ ही साथ छोटे बजट की फिल्में व षार्ट फिल्में अपने नए विषय और अनूठे कलेवर के साथ, अपने सृजनात्मक विचारों से समाज को एक नया नजरिया दे रही हैं। वे यह दिखाने में सफल रहे कि, अगर विचार आपके पास हों तो संसाधनों की कमी आड़े नहीं आ सकती। साहित्य के स्वर के साथ सिनेमा का स्वर भी बदल रहा है। नयी पीढ़ी छोटे–छोटे कस्बों से आकर अपनी छाप सिनेमा जगत में छोड़ रही है। उम्मीद की जा सकती है, कि यह कारवाँ आगे बढ़ता रहेगा और अपनी चमक बिखेरता रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, डॉ0 देवेन्द्र नाथ,– भारतीय सिनेमा की विकास यात्रा।
2. रहबर, हंसराज,– प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व।
3. भारद्वाज, डॉ0 शैलजा,– साहित्य और सिनेमा : बदलते परिदृश्य में संभावनाएँ और चुनौतियाँ।
4. कुन्दे, प्रो0 पुरुषोत्तम,– साहित्य और सिनेमा।
5. दास, विनोद,– भारतीय सिनेमा का अन्तःकरण।

*****

ASVS Society Reg. No. 561/2013-14